चिपको से चमोली तक

नीति आयोग ने सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों और राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण जैसी अर्धन्यायिक एजेंसियों द्वारा दिए गए निर्णयों के दूरगामी आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए एक अध्ययन शुरू किया है। निष्कर्षों को इन न्यायिक संस्थाओं के न्यायाधीशों के लिए प्रशिक्षण-इनपुट के रूप में उपयोग में लाया जाएगा।

हाल ही में चमोली जिले की घटना ने पारिस्थितिकी आंदोलनों और पहल की एक श्रृंखला को प्रेरित करते हुए पहाड़ों, जंगलों और जल क्षेत्रों की रक्षा करने की चुनौती दी है। 'चिपको आंदोलन' के लगभग 50 वर्ष बाद, अपने गांधीवादी सत्याग्रह, वन बचाओ आंदोलन और पर्यावरणीय नारीवाद के धागे से जुड़ा यह आंदोलन, स्थानीय संसाधनों पर स्थानीय जनता के नियंत्रण की मांग करता दिखाई देता है। आंदोलनों के कारण वनों को संरक्षित करना पड़ा था, क्योंकि वे जलस्त्रोतों का पोषण करते हैं, मृदा का पोषण करते हैं, और चट्टानों को यथास्थान रखते हैं। इससे भूस्खलन की संभावना कम हो जाती है। ये वन खेती के लिए खाद के स्रोत, पशुओं के लिए चारा और रसोई के लिए ईंधन के स्रोत रहे हैं।

आंदोलन से लेकर अब तक पर्यावरण और अर्थशास्त्र की भाषा में बहुत कुछ बदल गया है। गढ़वाल और कुमाऊं के पहाड़ों का प्रशासन बदल गया है। एक उदार अर्थव्यवस्था ने नए आकर्षण और आकांक्षाओं को जन्म दिया है। कल्याण की शब्दावली को बदल दिया गया है। पहले रही चुनौतियाँ और कठिन बन गई हैं। उत्तराखंड में 50 से अधिक पन बिजली परियोजनाओं और प्रस्तावित इकाइयों के साथ इस नाजुक क्षेत्र की वहन क्षमता से समझौता किया जा रहा है। ऊर्जा क्षेत्र और राज्य के राजनीतिक नेतृत्व का एक बड़ा वर्ग, इन परियोजनाओं को विकास के अवसरों से जोड़ता है। एक रिपार्ट से पता चलता है कि राज्य सरकार ने उत्तराखंड की ऊर्जा सुरक्षा और अर्थव्यवस्था में पनबिजली के महत्व को कम करते हुए कई ऐसे उपक्रमों के खिलाफ केंद्र की सख्ती का विरोध किया है। जनता द्वारा भी इन योजनाओं का अक्सर विरोध किया जाता है।

नीति आयोग का अध्ययन बहुत ही विरोधाभासी है। एक ओर तो वह कहता है कि "न्यायपालिका को पर्यावरण संतुलन और आर्थिक विचारों को ध्यान में रखना चाहिए।"और दूसरी ओर यह "नौकरी और राजस्व के नुकसान" के संदर्भ में, बाँधों और राजमार्गों के किसी भी विरोध का विरोध करता है।

देश के अधिकांश हिस्सों की तरह, पहाड़ों में किसी भी हस्तक्षेप की शुरूआत, पर्यावरण को मोहरा बनाने से होती है। इसका अर्थ "सतत विकास" में शरण लेने से होता है। हाल ही की त्रासदी के बाद आए उत्तराखंड के मुख्यमंत्री के वक्तव्य से भी यही पता चलता है।

पारिस्थितिक रूप से नाजुक क्षेत्रों में, प्राकृतिक आपदाएं अक्सर सार्वजनिक यादगार में साइनपोस्ट बन जाती हैं। चमोली की घटना ने भी उत्तराखंड की 2013 की बाढ़ को ताजा कर दिया। दोनों घटनाएं हिमालय पर्वत श्रृंखला की अनियमितताओं को उजागर करती हैं।

हिमालय एक विकसित होती हुई पर्वत श्रृंखला है। पर्वतमाला की ऊँचाई हर साल बढ़ती है। पहले से ही अस्थिर इसकी ढलान ग्लोबल वार्मिंग से जन्मी ग्लेशियर गतिविधि के कारण और भी अनिश्चित हो जाती है। जैसे ही बर्फ पिघलती है, चट्टाने और मलबा पानी के साथ पहाड़ी से नीचे गिरने लगते हैं। उत्तराखंड में लगभग 1400 विषम ग्लेशियर रिट्रीट हैं। 2019 के एक पेपर से पता चलता है कि सन् 2000 से पूर्व के 25 वर्षों की तुलना में ग्लेशियर का पिघलना दोगुना हो गया है।

जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकी के बीच का अंतर, निर्माण के दौरान बड़े पैमाने पर होने वाली पेड़ों की कटाई और ब्लास्टिंग से और भी भयानक हो गया है। 2013 की बाढ़ के बाद बनी रवि चोपड़ा समिति ने अपनी रिपोर्ट में पनबिजली परियोजनाओं को खत्म करने की सिफारिश के साथ, पर्यावरण मंजूरी प्रक्रिया को पूरा करने का आह्नान किया था। इन सिफारिशों को कभी लागू नहीं किया गया।

दुनिया के अधिकांश हिस्सों में पारिस्थितिकी प्रशासन की त्रासदी यह है कि यह पर्यावरण और विकास के दोहरे खेल में फंस गया है। नीति आयोग पर्यावरण मंजूरी प्रक्रियाओं को व्यापार में सुगमता की दिशा में बाधा के रूप में देखती है। इसके विपरीत, चिपको आंदोलन ने जंगलों, पहाड़ों और जल निकायों के प्रति मानव कल्याण के विचार को रोपा था। विडंबना यह है कि केवल कुछ ही ऐसे प्रयास हुए, जो विकास की इस वैकल्पिक धारणा को बनाए रखने की कोशिश करते।

चमोली त्रासदी का संदेश है कि पर्यावरण का सम्मान किया जाना चाहिए। पर्यावरण-अनुकूल विकास को व्यवहार में लाना होगा। हिमालय पर हमारे ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करने के लिए हमारे वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों का यही आह्नान है।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित कौशिक दास गुप्ता के लेख पर आधारित। 16 फरवरी, 2021